United International Journal of Multidisciplinary Research
ISSN: 3048-6726 (UIJMR) Impact Factor: 6.934 (SJIF)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
www.uijmr.in Vol-3, Special Issue-II ,2026

हिंदी उपन्यासों में पर्यावरण परिरक्षण

डॉ. पूनम कुमारी
एसोसिएट प्रोफेसर,डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम गवर्नमेंट,डिग्री कालेज, पठानचेरू, जिला संगारेड्डी,तेलंगाना

मानव प्रकृति का अभिन्न अंग है और उसने प्राकृतिक संसाधनों और प्रणालियों के आधार पर विकास किया है। विकास की आवश्यकता का उदय मनुष्य की सचेतन प्रेरणा के फलस्वरूप ही प्राकृतिक स्थिति को स्वहित में सुधारने के लिए होता है। मानव समाज अपना अस्तित्व सुख, सुविधा और मनोरंजन आदि की पूर्ति साधनों के उपयोग से करता है। प्रकृति अपने आप में सुंदर है और गांव स्वभाव से ही प्रकृति प्रेमी होता है। प्रकृति और मानव का संबंध उतना ही पुराना है, जितना कि इस सृष्टि की शुरुआत का इतिहास। मानव जीवन गांव, प्रकृति और पर्यावरण के बीच की एक कड़ी है। इन दोनों का संबंध चिरकाल से है। अग्नि, जल, वायु, आकाश और भूमि आदि पांच तत्वों से ही पर्यावरण बना है। प्रकृति और पर्यावरण ही मानव के अस्तित्व का द्योतक है।

नासिरा शर्मा ने 'कुईयाजान' उपन्यास में दर्शाया है कि छत्तीसगढ़ में भिलाई के पास शिवनाथ नदी की बाईस किलोमीटर की पट्टी को एक निजी कंपनी के हाथ में देकर वहाँ की भौगोलिक स्थिति और स्थानीय लोगों के लिए नदीं में प्रवेश पर रोक लगा दी गई। भौगोलिक स्थिति को लेकर प्रकृति और मानव के संबंधों के पूरे इतिहास में जाकर उन कारणों की तलाश की जो अच्छे साफ पानी को निरंतर लोगों से दूर किया जा रहा है- "हम दी से नदी जोड़ने की बात करते हैं, यानी कि पानी जहाँ है वहाँ पानी ले जाने की बात हो रही है, मगर जहाँ नदियाँ सूख गयी है वहाँ क्या होगा? हम स्वयं कल्पना कर सकते हैं कि जब एक बांध बनाने से कई लाख लोग विस्थापित हो जाते हैं तो नदियों के जोड़ने से कितने लाख गांव उजडेंगे? उसके रास्ते में आनेवाले कितने ही जंगल काटे जाएंगे? जिससे चरिंद व परिंद तो बेघर होंगे ही, हमारे मौसमों का क्या हाल होगा? इन्हीं ऋतुओं का आदी हमारा शरीर अधिक गर्मी और कम वर्षा के कारण किन रोगों से ग्रसित होगा? क्या हमारे फल और सब्जियाँ अपने मौलिक रूप में स्थिर रह पाएंगी? जमीन का क्या हाल होगा?"1 विषम भौगोलिक परिस्थितियों का लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। लेखिका ने इस उपन्यास के जरिए इस स्थिति को पाठकों से रू-ब-रू कराकर नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना पर जोर दिया है।

United International Journal of Multidisciplinary Research
ISSN: 3048-6726 (UIJMR) Impact Factor: 6.934 (SJIF)
An International Peer-Reviewed and Refereed Multidisciplinary Journal
www.uijmr.in Vol-3, Special Issue-II ,2026

'ग्लोबल गांव के देवता' उपन्यास के केंद्र में ऐसा समाज है, जो आज के दौर का सबसे अधिक शोषित आदिवासी समाज है। विस्थापन की प्रक्रिया से किसी भी समाज का केवल भौगोलिक परिवर्तन ही नहीं होता, बल्कि उसके साथ ही उस समाज का अमूलचूल परिवर्तन होता है। वास्तव में देखा जाए तो किसी भी समाज की अस्मिता को कालजयी और सम्माननीय बनाने के लिए उसकी भाषा और संस्कृति को बचाना अनिवार्य होता है। क्योंकि सांस्कृतिक पतन पूरे समाज को विवेकशून्य बनाता है तथा इस स्थिति में उसकी अस्मिता पर संकट खड़ा हो जाता है। इसलिए आवश्यक है कि आदिवासी समाज की अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए अपने अधिकार के लिए जागरूक हो, बिना स्वच्छंद प्राकृतिक वातावरण के आदिवासी समाज की कल्पना करना असंभव है। रणेंद्र ने इस उपन्यास में प्रकृति और पर्यावरण के साथ आदिवासियों का तादात्म्य स्थापित करना सफलतापूर्वक प्रयास किया है- "अखड़ा में पर्व-त्यौहार, सरहूल, हरियारी, सोहराय पर रातभर मांदर बजता। रातभर गांव-गांव से जवान लड़के जुटते। लड़किया जुटती। झूमर, जदुरा के बोलों पर रात भर चाँद नाचता। सखुआ और पलाश नाचता। नदी झरना पहाड़ नाचते। एक साथ पूरी प्रकृति नाचती।"2 लेखक ने प्रकृति के साथ आदिवासियों का स्वाभाविक तादात्म्य स्थापित कर उनके अस्मिता को बचाए रखने के लिए प्रतिक्रिया का मिलाजुला रूप प्रस्तुत किया है। बाँकसाइड खनन ने उसके प्राकृतिक संपदा को खत्म कर दिया है। उपन्यास में रणेंद्र ने रुमझुम की बातों से इस ओर संकेत किया है- "पहले ही शर्त को दरकिनार करते हुए खदानों से बाँकसाइट की निकासी के बाद गाडे मरने के बजाये यों ही छोड़े जा रहे थे। लाभ का कुछ भी हिस्सा पाक के लोगों के विकास पर कंपनियाँ खर्च नहीं करती थी। न पीने के पानी की व्यवस्था, पानी की व्यवस्था न हास्पिटल, न मलेरिया-डायरिया की रोकथाम का कोई इंतजाम। लेबर के अलावा स्थानीय लड़कों और किसी काबिल समझा ही नहीं गया भले उनके पास बी.ए., आई न की डिग्रियाँ हो।"[3] आज के समय में ऐसी कई घटनाएँ हमारे इर्द-गिर्द होने लगी है, जिसके कारण लोगों का जीवन संकट में आया है। प्लाटिमटा के कोकाकोला कंपनी के विरोध में हुई घटनाएँ इसका प्रमाण है। डॉ. ललिता प्रसाद विद्यार्थी ने इस संदर्भ में दर्शाया है कि- "प्रकृति की पूजा एक दूसरे प्रकार के विश्वास से भी संबद्ध है। जो जनजातियों में पायी जाती है। सूर्य, चंद्रमा एवं पृथ्वी या तारे रचयिता या सर्वशक्तिमान समझे जाते हैं और आदिवासी इन्हीं की पूजा करते हैं।"4 आदिवासी समाज में प्रकृति, पेड़, सूर्य प्रतीक के रूप में देखा जाता है। राकेश कुमार सिंह ने 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में पात्र शिक्षक संजीव के द्वारा दर्शाया है- "संजीव को लगता है, सभ्य समाज ने किनता कुछ खोने के बाद पर्यावरण के पाठ सीखना प्रारंभ किया है अभी, परंतु जंगलवालों के प्रकृति से प्रेम से रिश्ते तो आदिम हैं। सदियों से चले आ रहे हैं ये पारंपारिक और नैसर्गिक संबंध। पर्यावरण या प्रदूषण शब्द शायद ही जंगल समाज तक पहुँचा हो अभी।"5 आदिवासी समाज सदियों से ही प्रकृति का संरक्षण करता आया है, क्योंकि प्रकृति की गोद में वह पलकर बड़ा होता है। इसलिए प्रकृति उनके जीवन का अभिन्न अंग है।

आदिवासियों के स्वभाव में ही प्रकृति पूजा के भाव है। प्रकृति को ही वे सबकुछ मानते हैं। मुख्यधारा के समाज में प्रकृति को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है किंतु आदिवासी समाज प्रकृति और पर्यावरण को ही सबकुछ मानता है। उनमें धार्मिक और सांस्कृतिक तत्व अधिक मिलते हैं और ये मूल्य प्रकृति से जुड़े हुए हैं, इतना ही नहीं उनके नाम भी प्रकृति से जुड़े हुए हैं।

मधु कांकरिया ने 'खुले गगन के लाल सितारे' उपन्यास में गांव, प्रकृति और पर्यावरण के बीच के अटूट संबंध के बारे में मार्मिक चित्रण किया है- "इतना प्रेम प्रकृति से कि इनके नाम एवं उपनाम तक किसी पेड़-पक्षी के नाम पर रखे जाते। तिरकी (चिड़िया का नाम), मींडी, लकड़ा (जानवर), कुकुर (काजू के पेड़ का नाम), तिंबु (तिंबु का अर्थ कुजुर), इमली बाई, तोताराम आदि इनके प्रचलित नाम-उपनाम है।"6 गांव के लोगों का प्रकृति और पर्यावरण के साथ गहरा संबंध होता है। इसलिए वे सबसे अधिक प्रकृति और पर्यावरण के निटक हैं और वे ही पर्यावरण का परिरक्षण करते हैं। प्रकृति और पर्यावरण ही उनका घर और आंगन है। यह कह सकते हैं कि गांव प्रकृति और पर्यावरण की गोद में पलता है। राकेश कुमार सिंह के 'जो इतिहास में नहीं है' में गांव और वृक्ष पूजा का वर्णन है- "वन, पर्वत या नदियों को पूजने वाला आदिवासी समाज किसी विशिष्ट अध्यात्मिकता की बनिस्बत कहीं अधिक गहराई से जुड़ा है अपनी पातालगामी सांस्कृतिक परंपराओं से। समर्पण जीव-जगत् से। वनवासियों के लिए प्रकृति एक प्रागैतिहासिक मिथकीय शक्ति भी है और सामाजिक निर्मिती का औजार भी। प्रकृति वनवासियों के लिए जंगल की चेतना में रची-बसी संस्कृति भी है औऱ नैसर्गिक प्रेरणा भी। संथाल समाज का एक विशिष्ट त्यौहार है 'पहाड़पूजा'।"7 इस तरह उपन्यासकार ने पर्यावरण के परिरक्षण को दर्शाया है।

संजीव ने 'धार' उपन्यास में औद्योगिकरण के कारण निर्मित आघातों को जीवंत रूप में मार्मिक रूप चित्रण किया है। पूंजीपतियों की साजिशों के कारण जेल चली गयी मैना की वापसी के साथ उपन्यास का प्रारंभ होता है। यह मैना की संकट गाथा है, जो अस्तित्व के लिए कहाहती है। अस्तित्व के संकट को भोगनेवाले बासगड़ा की जनता काम के लिए अपनी खेती-भूमि तेजाब फैंक्ट्री के लिए देते हैं। फैक्ट्री से निकलनेवाला जहरीला धुआ, कुडा पर्यावरण को दूषित करता है और लोगों का जीवन दुस्सह बन जाता है। उपन्यास में मामा का कथन इस तरह है- "बोले तेजाब का कारखाना से खेत-बड़ी कुआ पोखरा। सब खराब होता इसके बंद करो मजदूर फूट गए तो बेचरा फौकल, मेना का मरद, बाहर से मजदूर ले आया, सबको भी फोड़ दिया।"8 पूरा गांव संकटग्रस्त बनता है और पर्यावरण दूषित किया जाता है। खनिज उद्योगों का बढ़ावा बांसगढ़ गांव के सर्वनाश का कारण बन जाता है। मैना इन सबके विरोध आवाज उठाती है, जो उसकी मौत का कारण बन जाता है। हर जगह प्रदूषित पर्यावरण था- "चारों तरफ अंधेरा था। वह

लाख जतन करती कि कहीं से आशा की धार इस अंधेरे को चीर सके लेकिन अंधेरा गड़े की खाल बन गया था, कट-कट जुड़ता हुआ।"9 उपन्यासकार ने इस संकटमय पर्यावरण को पूरी तन्मयता से उजागर करने का प्रयत्न किया है।

हरिराम मीणा ने 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में लोगों का प्रकृति और पर्यावरण के परिरक्षण का चित्रण किया है। वे प्रकृति का संरक्षण करते हैं। लेखक के शब्दों में- "ऋतुओं की भंगिमाओं के अनुरूप अपने को ढालते रहना उनकी आदिम व पुश्तैनी प्रवृत्ति थी।...डंगरपुर और बांसवाड़ा रियासतों का सीमावर्ती गांव भूखिया अरावली पर्वत श्रृंखलाओं के मध्य का एक छोटा सा हिस्सा था, जिसके चारों ओर घने जंगल और बेतरतीब काली पहाड़ियाँ। नाटे कद, काले रंग के इस पहाड़ी भू-भाग पर बसे कम ऊँचाई और सांवले रंग के आदिवासी। इस पहाड़ी वनांचल के चप्पा-चप्पा से आत्मीय लगाव चला आ रहा था यहाँ के बासिंदो का। प्रकृति और मानवेत्तर प्राणी जगत से मनुष्यों का गहरा सामंजस्य। इनके मन में कहीं कोई प्रतिस्पर्धा, अधिपत्य, शोषण व असंतुलन का भाव नहीं था।"10 यहाँ के लोगों की जीवन शैली प्रकृति के साथ जुड़ी है। यह उनके जीवन की मुख्य विशेषता है। उनका गहरा संबंध केवल प्रकृति और पर्यावरण के साथ ही नहीं बल्कि मानवेत्तर प्राणियों के साथ भी है। गांव का प्रकृति और पर्यावरण में गहरा विश्वास होता है। इसलिए ये प्रकृति की आत्मीयता के साथ पूजा करते हैं। 'बाजत अनहद ढोल' उपन्यास में प्रकृति और पर्यावरण है। एक अंग्रेज पोटेंट नामक सरकारी अधिकारी ने गांव के एक व्यक्ति गोग को भोगनाडिग गाव में चर्च बनने के बारे में कहा, उस पर वह कहता है कि, नाम जरूर सुना है चर्च का। लेकिन नहीं मालूम यह क्या है। पोटेंट कहता है कि यह चर्च हम ईसाईयों का प्रार्थना स्थल है। जवाब में गोगो कहता है- "हमारा तो कोई मंदिर-चर्च नहीं होता। हम तो खुले आकाश के नीचे ही पहाड़,. नदी, पेड़, कंदरा को अपने प्रभु मानते हैं।"11 उपन्यासकार ने गांव के लोगों में प्रकृति और पर्यावरण की कितनी महत्ता है, उसका मार्मिक चित्रण किया है।

अत: पर्यावरण के विभिन्न आयामों का चित्रण उपन्यासकारों की यथार्थवादी दृष्टि की ही उपज है। पर्यावरण का अर्थ केवल हवा, पानी या जमीन नहीं है बल्कि पर्यावरण में वे समस्त प्राकृतिक संसाधन समाहित हैं, जिन पर मानव जीवन का अस्तित्व टिका हुआ है। किसी भी तरह से पर्यावरण पर पड़नेवाला दुष्परिणाम मानव जीवन पर गहरा प्रभाव डालता है। पर्यावरण और मानव अस्तित्व एक-दूसरे के पूरक है। पर्यावरण के बिना मानव जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। वर्तमान में भारत में पर्यावरण की समस्या गंभीर समस्या के रूप में उभरी है, जिसके रक्षण की बात उपन्यासकारों ने की है।

संदर्भ :

नासिरा शर्मा – कुईयांजान, पृ.सं. 404
रणेंद्र – ग्लोबल गांव के देवता पृ.सं. 26
रणेंद्र – ग्लोबल गांव के देवता, पृ.सं. 51
श्रीचंद्र जैन – आदिवासियों के बीच, पृ.सं. 15
राकेश कुमार सिंह – पठार पर कोहरा, पृ.सं. 132
मधु कांकरिया - खुले गगन के लाल सितारे, पृ.सं. 101
राकेश कुमार सिंह – जो इतिहास नहीं है, पृ.सं. 85
संजीव – धार, 49
संजीव – धार, पृ.सं. 79
हरिराम मीणा – धूणी तपे तीर, पृ.सं. 33
मधुकर सिंह – बाजत अनहद ढोल, पृ.सं. 28